आरएसएस और मुस्लिम ब्रदरहुड की नौ समानताएं जो कर देंगी आपको चकित

आरएसएस और मुस्लिम ब्रदरहुड में ये समानताएं साबित करती हैं कि दोनों ही संगठन दंगाई, धर्मोन्मादी और संविधान विरोधी हैं।

वरिष्ठ पत्रकार पीयूष पंत का विश्लेषण

ये बात तो माननी ही होगी कि कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी बड़ी बेबाकी से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) को घेरते हैं। दूसरे अनेक राजनीतिक दल चाहते हुए भी संघ को सीधे निशाने पर लेने से बचते हैं।

संघ पर दिए अपने बयानों के कारण राहुल गांधी की आलोचना भी हुयी है और उनके खिलाफ मानहानि का केस तक दाखिल किया गया है। लेकिन राहुल गांधी संघ की आलोचना का कोई मौका नहीं छोड़ते हैं।

अभी 24 अगस्त को लन्दन स्थित इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर स्ट्रैटेजिक स्टडी? में श्रोताओं के सवालों का जवाब देते हुए उन्होंने संघ को अरब दुनिया के संगठन 'मुस्लिम ब्रदरहुड' जैसा बता डाला। उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भारत के मिजा? को बदलने और भारत की सभी संस्थाओं पर करने की कोशिश कर रहा है, आरएसएस का विचार अरब दुनिया के मुस्लिम ब्रदरहुड के उस विचार के ही समान है जो कहता है कि हर एक संस्था एक ही विचारधारा से संचालित होनी चाहिए और यह कि एक खास विचारधारा को बाकी सभी विचारधाराओं का खात्मा कर देना चाहिए।

संघ का पलटवार करना लाजिमी था। लिहाजा संघ के राजनीतिक घटक भारतीय जनता पार्टी ने राहुल को 'सबसे बुद्धिमान मूर्ख और अपरिपच-अनभिज्ञ नेता' तक कह डाला। हम इस बहस में नहीं पड़ना चाहते कि राहुल गांधी अपरिपच अथवा अनभिज्ञ है या नहीं। हम तो बस यह जानने की कोशिश करेंगे कि राहुल ने अगर मुस्लिम ब्रदर हुड और आरएसएस में समानता बताई है तो उसके पीछे ठोस आधार हैं या फिर मामला हवा-हवाई है? इसके लिए पूरी अरब दुनिया में पैर पसारे मुस्लिम ब्रदरहुड संगठन के बारे में भी थोड़ा-बहुत जान लेना जरूरी होगा।

मुस्लिम ब्रदरहुड (इख्वान) की स्थापना 1928 में मिस्र के इस्माइलिया में हसन अल-बन्ना ने की थी। पेशे से स्कूली शिक्षक बन्ना इस्लामिक विद्वान थे और वो अरब को विदेशी शासन से आजाद कर इस्लाम के आदर्शों पर आधारित राजव्यवस्था कायम करना चाहते थे। गरीब लोगों के बीच अपनी पैठ और किये जा रहे सामाजिक कार्यों के चलते संगठन राजनीतिक रूप से बहुत जल्दी प्रभावी तथा लोकप्रिय हो गया और मिस्र के राष्ट्रवादी आंदोलन में भी हस्तक्षेप करने लगा।

मुस्लिम ब्रदरहुड के तौर-तरीकों ने अरबी दुनिया के दूसरे देशों में भी अपने समर्थक बनाये। इस संगठन की एक खासियत यह भी थी कि ये धुर कट्टरवादी नहीं था और इसे इस्लामी सिद्धांतों और आधुनिकता के मूल्यों के बीच संतुलन व सामंजस्य बनाने से कोई परहेज नहीं था। यही कारण है कि यह वर्तमान के अल-कायदा और आईएसआईएस सरीखे जिहादी कट्टरपंथी संगठनों से अलग था। इसे लोकतंत्र और राष्ट्र-राज्य से कोई परहेज नहीं था। और इसी के चलते इसे अरब देशों में लोकप्रियता भी मिली।

इस्लामी ब्रदरहुड का मुख्य दर्शन समाज में रहते हुए सामाजिक कार्यों के माध्यम से लोगों के बीच अपनी विचारधारा को फैलाना है। इस तरह से कुछ समय बाद इसे लोकतांत्रिक तरीकों से सरकारी संस्थानों पर कब्जा करने और अंत में एक धर्म शासित राज्य स्थापित करने में मदद मिलेगी।

अगर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की हिंदुत्ववादी विचारधारा और प्राकृतिक आपदाओं के समय संघ कार्यकर्ताओं द्वारा मुस्तैदी से पीड़ितों की मदद करना और मोहल्ले-मोहल्ले शाखाओं और सरस्वती शिशु मंदिरों का जाल बिछा कर लोगों के बीच अपनी पैठ बनाने की ओर नजर डालें तो ये तौर-तरीका तो वही दिखाई देता है जो इस्लामिक ब्रदरहुड का है।

इस तरह से देखा जाए तो राहुल गांधी कुछ गलत नहीं कह रहे हैं।

कुछ और समानताएं गिनाते हुए उन्होंने बाद में एक न्यूज एजेंसी से कहा -"1920 के दशक के दौरान ही दोनों संगठनों की नींव पडी थी, दोनों ही संगठन चुनावी प्रक्रिया को सत्ता पर कब्जा जमाने का माध्यम मानते हैं, अनवर सादात की हत्या के बाद मुस्लिम ब्रदरहुड पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था, और महात्मा गाँधी की हत्या के बाद आरएसएस पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। दोनों ही संगठनों में महिलाओं का प्रवेश वर्जित है। इसलिए दोनों सगठनों के बीच बहुत अधिक समानताएं हैं।"

राहुल गाँधी ने तो केवल कुछ ही समानताएं बताईं हैं। अगर गौर किया जाए तो दोनों सगठनों के बीच बहुत सी समानताएं नजर आने लगेंगी।

पहली समानता

मुस्लिम ब्रदरहुड और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के न?रिये और कार्य करने की शैली में आपको समानता नजर आएगी। दोनों ही संगठन लोगों को बहुसंख्यक धार्मिक समूह के तर्ज पर लामबन्द करते हैं और इस प्रकार उस बहुसंख्यक धार्मिक समूह का वर्चस्व समाज और सरकार दोनों पर ही समान रूप से हासिल कर लेते हैं।

दूसरी समानता

मुस्लिम ब्रदरहुड गरीब तबके के बीच दान-कार्य और सहायता के माध्यम से राजनीतिक जमीन तैयार करने पर जोर देता है। लिहाजा 1928 में जब इसकी स्थापना हुई तो पूरे मिस्र में इसकी शाखाएं खोल दी गईं। हर शाखाओं को एक मस्जिद, स्कूल और खेल क्लब की देखरेख का जिम्मा सौंपा गया। इससे संगठन की सदस्यता काफी तेजी से बढ़ी। 1925 में अपनी स्थापना के शुरआती दौर में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का जोर लोगों को हिन्दू अनुशासन का पाठ पढ़ाकर उनका चरित्र निर्माण करना और हिन्दू समुदाय को संगठित कर हिन्दू राष्ट्र की स्थापना करना था।

इस दिशा में संघ ने द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान यूरोप के दक्षिणपंथी समूहों से बहुत कुछ सीखा था। धीरे-धीरे संघ ने एक बहुत बड़े हिन्दू संगठन का आकार ले लिया जिसकी बहुत सारी अनुषांगिक इकाइयां गठित की गयीं जिनका काम इसके वैचारिक सिद्धांतों को फैलाने के लिए देश के कोने-कोने में सरस्वती शिशु मंदिर नामक स्कूल खोलना, दान-संस्थाओं और क्लबों को चलाना था।

तीसरी समानता

दोनों ही संगठन समाज सेवा के बहाने अपनी राजनीतिक जमीन तैयार करते हैं। संघ शाखाओं और सरस्वती शिशु मंदिरों को अपना माध्यम बनाता है तो ब्रदरहुड स्कूलों और खेल-क्लबों को। दोनों ही अपनी विचार-धारा से पहले व्यक्ति के नजरिए को बदलने की कोशिश करते हैं, फिर उसके माध्यम से परिवार के नजरिये को और अंत में पूरे समाज के नजरिये को।

चौथी समानता

धार्मिक अल्पसंख्यकों को लेकर दोनों का ही नजरिया भी एक जैसा ही दिखाई देता है। दोनों संगठन अल्पसंख्यकों को कुछ ऐसे पेश करते हैं मानों कि उन्हें ज्यादा सुविधाएँ दी जा रही हों, उनका तुष्टिकरण किया जा रहा हो और वे हैं कि बहुसंख्यक आबादी के लिए खतरा बने हुए हैं।

पांचवी समानता

संघ की तरह ही ब्रदरहुड भी धार्मिक अल्पसंख्यकों के देश प्रेम और देश भक्ति पर सवाल उठाता रहता है। संघ की तरह ब्रदरहुड पर भी अल्पसंख्यकों से घृणा करने और उन्हें हिंसा का शिकार बनाने के आरोप लगते रहे हैं। यह भी देखने में आया है कि दोनों को ही 'षड्यंत्र के सिद्धांत' से लगाव है।

छठी समानता

दोनों ही संगठनों पर यह भी आरोप लगते रहे हैं कि वे अल्पसंख्यकों के प्रति हिंसा का इस्तेमाल राजनीतिक रोटियां सेंकने के लिए करते हैं। दोनों ही इन आरोपों को खारिज भी करते हैं।

सातवीं समानता

एक और चीज जो इन्हें समान बनाती है वो है इनका लचीलापन। दोनों ही संगठन जरुरत के हिसाब से एक पल उदारवादियों और धर्म-निरपेक्ष ताकतों के साथ गठबंधन बना लेते हैं तो दूसरे पल प्रतिक्रियावादी ताकतों के साथ खड़े दिखते हैं। वे हिंसा का इस्तेमाल तो करते हैं लेकिन मुख्यधारा में खुद को स्वीकार करवाने के लिए हिंसा का रास्ता छो?ने की बात भी कहते हैं।

आठवीं समानता

दोनों ही संगठनों पर समय-समय पर प्रतिबंध लगाए गए हैं।

नवीं समानता

दोनों ही संगठन अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान की दुहाई देते हैं, लेकिन इनका असली मकसद राज्य की सत्ता और संवैधानिक संस्थाओं पर अपनी विचारधारा का कब्जा करवाना होता है। इसके लिए वे अपना राजनीतिक मंच तैयार करते हैं। संघ खुद को एक सांस्कृतिक संगठन जरूर कहता है लेकिन सत्ता पर कब्जा करने के लिए इसने सरदार पटेल को दिए आश्वासन को तोड़ते हुए एक राजनीतिक घटक जनसंघ की स्थापना की जो बाद में भारतीय जनता पार्टी के रूप में सामने आया और आज देश के लगभग दो तिहाई हिस्से में सत्ता पर काबिज है और संघ के व्यक्ति ही लगभग सभी संवैधानिक संस्थाओं के शीर्ष पर काबिज हैं।

इसी तरह मिश्र में 2011 तक धार्मिक समूहों के चुनाव लड़ने पर प्रतिबन्ध था, लेकिन इसे ठेंगा दिखाने के लिए ब्रदरहुड ने 'फ्रीडम एंड जस्टिस पार्टी' के नाम से एक राजनीतिक मोर्चा खोल दिया। पहले तो कहा गया कि मोर्चा चुनाव नहीं लड़ेगा लेकिन बाद में वो मुकर गया और चुनाव लड़ा, जिसके चलते 2012 में ब्रदरहुड के मोहम्मद मोरसी मिश्र के राष्ट्रपति बने। लेकिन साल भर बाद ही व्यापक जन प्रतिरोध के चलते सेना ने उनका तख्ता पलट कर दिया।

जन प्रतिरोध न केवल आर्थिक मुद्दों को लेकर था, बल्कि इस बात पर भी था कि देश और सरकार का तेजी से इस्लामीकरण हो रहा है और सरकारी संस्थाओं पर मुस्लिम ब्रदरहुड का कब्जा बढ़ता चला जा रहा है।

तो क्या भारत में भी संघ द्वारा किये जा रहे भगवाकरण के खिलाफ उभर रहे जन प्रतिरोध का नजारा 2019 में भारतीय जनता पार्टी के खिलाफ जनादेश के रूप में सामने आ पायेगा?

जन्म शतवार्षिकी पर विशेष:मंडल कैसे बने इतिहास के एक पाठ?

प्रेम कुमार मणि

25 अगस्त उस विन्ध्येश्वरी प्रसाद मंडल का जन्मदिन है, जिनकी अध्यक्षता वाले आयोग के प्रस्तावित फलसफे को लेकर 1990 में भारतीय राजनीति में एक भूचाल आया और उसने राजनीति की दशा-दिशा बदल दी। यह जन्मदिन कुछ खास है। आज उनके जन्म की सौवीं सालगिरह है। इसलिए आज उन्हें याद किया ही जाना चाहिए। लेकिन मैं अपने ही अंदाज में उन्हें याद करूँगा। मेरी कोशिश हालिया इतिहास के उस पूरे दौर पर एक विहंगम ही सही नजर डालने की होगी जिसने वीपी मंडल और उनकी राजनीति को आगे लाया।

हाई स्कूल का छात्र था, जब वीपी मंडल का नाम मैंने पहली दफा सुना था। साल के हिसाब से वह 1967-68 का जमाना था। तब बिहार में संयुक्त विधायक दल, जिसका संक्षिप्त रूप संविद था, की सरकार थी, जिसके मुखिया महामाया प्रसाद सिन्हा थे। यह गैर कांग्रेसी सरकार थी। कांग्रेस विरोधी लगभग सभी राजनीतिक दलों का जमावड़ा था यह संविद। इसमें पूर्व कांग्रेसी, जनसंघ, सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट से लेकर राजा रामगढ़ की पार्टी जनक्रांति दल तक शामिल थे। सच्चे अर्थों में यह एक ऐसा राजनीतिक पंचमेल था, जिस पर विचार करना दिलचस्प हो सकता है।

महामाया प्रसाद सिन्हा मुख्यमंत्री कैसे हुए? इसे जाने बगैर हम शायद आगे नहीं बढ़ सकते। सिन्हा राजा रामगढ़ की पार्टी जनक्रांति दल के विधायक दल के उपनेता थे, जिनके विधायकों की संख्या 27 थी। संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी सबसे बड़ी पार्टी थी, जिसके 68 सदस्य थे। इसके नेता कर्पूरी ठाकुर थे। स्वाभाविक रूप से वह संयुक्त विधायक दल के नेता और मुख्यमंत्री होते। लेकिन कर्पूरी ठाकुर पिछड़ी जाति से आते थे। ऊंची जाति से आने वाले समाजवादियों और साम्यवादियों के ही एक तबके ने निश्चय किया कि किसी कीमत पर कर्पूरी ठाकुर को सीएम नहीं बनने देना है।

इसलिए इन लोगों ने कहा कि जनभावनाओं का ख्याल किया जाना चाहिए। कैसी जनभावना! तर्क यह बना कि महामाया सिन्हा ने चूंकि मुख्यमंत्री केबी सहाय को पराजित किया है, इसलिए वह मुख्यमंत्री होंगे। इसी दलील पर वह (सिन्हा) मुख्यमंत्री बन गए। लेकिन यह भी थी मुख्यमंत्री केबी सहाय ने दो स्थानों से चुनाव लड़ा था और दोनों जगहों से पराजित हुए थे। दूसरी जगह से उन्हें पराजित किया था पिछले तबके के रघुनंदन प्रसाद ने। प्रसाद मुख्यमंत्री तो क्या, मंत्री भी नहीं बनाये गए। पिछड़े वर्ग के राजनीतिक कार्यकर्ताओं में इस बात की खूब चर्चा हुई।

बिहार में पिछड़े वर्गों की राजनीति को आगे करने में केबी सहाय की भी महती भूमिका रही थी। कांग्रेसी राजनीति के मध्य से ही उन्होंने पिछड़ों की राजनीति को बल दिया और इसे अपने राजनीतिक दुश्मनों ,जो उनकी पार्टी के ही अन्य ऊँची जाति के लोग थे, को तहस-नहस करने में इस्तेमाल किया। महामाया सरकार ने कांग्रेसी सरकार के भ्रष्टाचार की जाँच के लिए अय्यर आयोग बैठाया था। कहते हैं इसके भय से भी कांग्रेसी संविद सरकार को गिराने के लिए कटिबद्ध हुए। सहाय ने जाने अनजाने अपने पुराने राजनीतिक उपकरणों का इस्तेमाल किया। यानी पिछड़ा वर्गीय राजनीति के तुरुप के पत्ते को पटक दिया। कांग्रेस विधायकों की संख्या 128 थी। उस वक्त बिहार झारखंड एक ही था। सरकार बनाने के लिए 32 या 35 विधायकों की दरकार थी। यह वही समय था जब लोहिया का पिछड़े पावें सौ में साठ का फलसफा चर्चित हुआ था और यथेष्ट संख्या में पिछड़े विधायक विधान सभा में आये थे। केबी सहाय ने अपने प्रतिद्वंदी महामाया को पराजित करने का बीड़ा उठा लिया था।

इसी के समानान्तर सत्ता पक्ष में राजनीतिक बुलबुले उठ रहे थे। संसोपा में ऊँची जातियों के नेता कसमकस कर रहे थे। राजनीतीक बदलाव के सामाजिक परिप्रेक्ष्य उन्हें सुहा नहीं रहे थे। इसके साथ ही पिछड़े राजनीतिक कार्यकर्ताओं में भी तरह -तरह की प्रतिक्रिया हो रही थी। इन्हीं सब के बीच लोहिया ने हस्तक्षेप किया।

उन्होंने अपनी ही पार्टी के लोगों की इस बात के लिए आलोचना की कि आखिर कर्पूरी ठाकुर को मुख्यमंत्री क्यों नहीं बनने दिया गया। फिर पार्टी के दूसरे तौर तरीकों पर भी उंगली उठाई। वीपी मंडल कांग्रेस से आये थे और लोकसभा के लिए चुने गए थे। लेकिन बिहार में स्वास्थ्य मंत्री बना दिए गए थे। लोहिया ने पूछा यह क्यों हुआ? क्या इसलिए कि श्री मंडल जमींदार परिवार से आते थे? मंडल को मजबूरन इस्तीफा देना पड़ा। सत्ता पक्ष में दरकन आ चुकी थी।

केबी सहाय ने इसे ही लेकर राजनीति शुरू कर दी। मंडल मुखर नहीं थे, लेकिन उनकी राजनीतिक औकात थी। कोसी इलाके से आये यादव -पिछड़े विधायकों के एक अच्छे-खासे समूह पर उनका कब था। एक अन्य सोशलिस्ट जगदेव प्रसाद राजनीति को फलसफा देने में सक्षम थे। इन दोनों ने मिलकर शोषित दल बनाया। 1967 का अगस्त का ही महीना था। भूल नहीं रहा हूँ तो 25 ही तारीख होनी चाहिए। स्थान था पटना का ऐतिहासिक अंजुमन इस्लामिया हाल जहां कभी जयप्रकाश नारायण के प्रयासों से 1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना हुई थी। ध्यातव्य यह भी है कि लोहिया के जीवनकाल में ही यह विद्रोह हो चुका था।

शोषित दल के निर्माण और संविद सरकार के पतन के पीछे इतिहास के अवचेतन साधन सक्रिय थे। इसे समझना बहुत आसान नहीं होगा। जातिवाद कुछ लोगों में महानता के भाव भरती है तो बहुतों में हीनता के झाग भी। दोनों की अलग-अलग प्रतिक्रिया होती है। इस मामले पर हमने यदि निष्पक्ष व वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं अपनाया तब गलत निष्कर्ष पाने के लिए अभिशप्त होंगे।

किस्सा-कोताह ये कि एक नाटकीय प्रकरण से गुजर कर वीपी मंडल मुख्यमंत्री हो गए और चर्चित हुए। उनकी सरकार कोई सवा महीने ही चली। जातीय आधार पर जैसे सोशलिस्ट पार्टी टूटी थी, वैसे ही कांग्रेस भी टूटी और लोकतान्त्रिक कांग्रेस का निर्माण हुआ। पिछड़ा की प्रतिक्रिया में एक दलित भोला पासवान शास्त्री मुख्यमंत्री बनाये गए। कांग्रेसी राज में जो जातिवाद परदे के पीछे होता था, अब सामने होने लगा और उसमें दलित-पिछड़े पात्र भी शामिल होने लगे। यह राजनीति की नई करवट थी ,नया मोड़ था।

वीपी मंडल लम्बे अरसे तक राजनीतिक हाइबरनेशन में रहे। सितम्बर 1974 में जिस दिन जगदेव प्रसाद की हत्या हुई रेडियो पर गुस्से और दु:ख में पगी उनकी प्रतिक्रिया आई- सरकार को पिछड़े-दलित नेताओं के जान की कोई चिंता नहीं है। सरकार ने जगदेव बाबू की हत्या कर दी। अपने साथी की हत्या से दुखी वीपी मंडल की इस प्रतिक्रिया में दु:ख से अधिक गुस्सा था। लेकिन इस गुस्से का राजनीतिक रूपांतरण वह नहीं कर सकते थे। इस स्तर के राजनेता वह शायद नहीं थे। यह उनकी सीमा भी थी।

1977 में वह जनता पार्टी के टिकट पर जीते और संसद पहुंचे। चुप्पे सांसद बने रहे। उनके स्तर से किसी राजनीतिक सक्रियता की जानकारी नहीं मिलती। इस बीच बिहार में आरक्षण को लेकर सामाजिक -राजनीतिक कोहराम मचा था। कर्पूरी ठाकुर सरकार ने मुंगेरी लाल की अध्यक्षता वाले पिछड़ा वर्ग आयोग की सिफारिशें लागू कर दी थीं। राष्ट्रीय स्तर पर पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण की मांग उठने लगी। तत्कालीन जनता पार्टी ने अपने चुनाव घोषणा पत्र में इन तबकों के लिए तैंतीस फीसद आरक्षण का वायदा किया हुआ था।

1953 में गठित काका कालेलकर आयोग ने अपनी सिफारिशों में साढ़े बाईस फीसद आरक्षण देने की सिफारिश की थी। बहुत पुराने इस आयोग की समीक्षा जरुरी थी। इसी परिप्रेक्ष्य में मोरारजी सरकार ने एक जनवरी 1979 को दूसरा पिछड़ा वर्ग आयोग गठित किया, जिसके अध्यक्ष वीपी मंडल बनाये गए।

अंतर्मुखी स्वभाव के मंडल ने इस अवसर को पहचाना और निष्ठा पूर्वक कार्य सम्पादित किया। मंडल ने पिछड़े वर्गों के लिए उसी स्तर का काम किया, जिस स्तर का काम दलितों के लिए डॉ आंबेडकर ने किया था। पिछड़े वर्गों में शामिल जातियों के निर्धारण में संभव वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया। काका कालेलकर आयोग में केवल हिन्दू पिछड़ी जातियों की सूची थी। मंडल ने इसे मुस्लिम और अन्य धर्मावलम्बियों को शामिल किया। इस तरह इसे व्यापक फलक मिला। उनकी पूरी कोशिश हुई कि पिछड़ी जातियों को एक वर्ग रूप दे सकें। बहुत हद तक वह सफल भी हुए।

आयोग की रिपोर्ट सौंप कर वह 1982 में चल बसे। उनके जीवन काल में इसे लागू नहीं किया जा सका। इसके लिए एक और वीपी का इंतजार था। लम्बे अरसे तक पड़े रहने के बाद इन सिफारिशों को 1990 के अगस्त में लागू किया जा सका। इसकी भीषण राजनीतिक प्रतिक्रिया हुई। वीपी सिंह की सरकार गिर गई। पक्ष और विपक्ष में आंदोलनों का सिलसिला लग गया। लेकिन एक मुद्दा चुपचाप भारतीय राजनीति का हिस्सा बन गया। वह था सामाजिक न्याय का मुद्दा। इस राजनीति के आधार रखने वाले थे -वीपी मंडल और वीपी सिंह। इस तरह एक इंसान इतिहास का हिस्सा बन गया। मंडल इतिहास के एक पाठ बन गए।

वीपी मंडल की शतवार्षिकी पर उनका मूल्यांकन होना चाहिए, उन पर चर्चा होनी चाहिए। उनके बहाने सामाजिक न्याय की समीक्षा होनी चाहिए और कुल मिलाकर समता मूलक समाज के पाठ को मजबूत करना चाहिए। इस विकासवाद की आंधी में समत्व के चिराग मुश्किलें झेल रहे हैं। इन्हें बचाना जरुरी है। अन्यथा मनुष्यता खतरे में पड़ जाएगी।

उस ऐतिहासिक व्यक्तित्व को मेरी श्रद्धांजलि।